कविग्राम

वर्ष 3, अंक 4, मई 2022

ग़ज़ल
मुहब्बत की जुबां

कविग्राम

वर्ष 3, अंक 4, मई 2022

परामर्श मण्डल
सुरेन्द्र शर्मा
अरुण जैमिनी
विनीत चौहान

सम्पादक
चिराग़ जैन

सह सम्पादक
मनीषा शुक्ला

प्रकाशन स्थल
नई दिल्ली

प्रकाशक
कविग्राम फाउण्डेशन

उपरोक्त सभी पद मानद तथा अवैतनिक हैं।
कविग्राम में प्रकाशित लेख तथा कविताओं में व्यक्त विचार उनके रचयिताओं की निजी राय है।

मूल्य : निःशुल्क

kavigram.com

TheKavigram@gmail.com

kavigramfoundation

facebook.com/kavigram

youtube.com/c/KaviGram

8090904560

thekavigram

thekavigram

भीतर के पृष्ठों पर

सम्पादकीय / हर बात सुनी जाती है / चिराग़ जैन / 04
आवरण कथा / ग़ज़ल : मुहब्बत की ज़ुबां / चिराग़ जैन / 05
वटवृक्ष / हमन है इश्क़ मस्ताना / कबीरदास / 10
गुलमोहर / सब के सब परीशां हैं / दुष्यन्त कुमार / 11
गुलमोहर / कोई तो पार गुज़रे / मीना कुमारी नाज़ / 12
गुलमोहर / डूबना आसान है / अदम गोंडवी / 13
गुलमोहर / हिचकियाँ अच्छी लगीं / डॉ. कुँअर बेचैन / 14
गुलमोहर / प्यार करना चाहिए / अंजुम रहबर / 15
फुलवारी / तो कोई बात नहीं / अक्स समस्तीपुरी / 16
फुलवारी / ऐसे भी कुछ चिराग़ / सिया सचदेव / 17
विनोद / ख़ुदा ख़ैर करे / पॉपुलर मेरठी / 18
कटाक्ष / क्या-क्या चल रहा है / अशोक अंजुम / 19
लोक-लालित्य / मन कह रह्यौ है / नवीन सी चतुर्वेदी / 20
श्रद्धांजलि / माया गोविन्द/ 21
कवि-सम्मेलन संग्रहालय / माया गोविन्द / 22
कोकिला कुल /सुमित्रा कुमारी सिन्हा / सोनरूपा विशाल / 23
कवितैव कुटुम्बकम / अंग्रेज़ी नहीं आती क्या? / डॉ. अशोक चक्रधर / 25
धारदार / ग़ालिब के परसाई / हरिशंकर परसाई / 30
सम्पादक की पाती / 37

हर बात सुनी जाती है...

जब तोप मुक़ाबिल हो तो अख़बार निकालो... शब्द की ताक़त को इससे अधिक प्रभावी ढंग से शायद अन्यत्र नहीं कहा जा सका। हमारे यहाँ शब्द को ब्रह्म कहा गया है। शब्द की ताक़त दुनिया के हर हथियार से अधिक होती है। इसीलिए हथियार का घाव भर जाता है, लेकिन शब्द का घाव कभी नहीं भरता। कहनेवाले तो यहाँ तक कहते हैं कि 'अंधे का पुत्र अंधा' - इन चार शब्दों की लपट में सहस्त्रों अक्षौहिणी सेना भस्म हो गयी। ज़ार निकोलस द्वितीय की पत्नी के एक वाक्य ने रूस की क्रांति को जन्म दिया।

मेरा व्यक्तिगत मत है कि शब्द सृजन का स्वरूप है, लेकिन इसका दुरुपयोग किया जाए तो यह विध्वंस भी मचा सकता है। शब्दों के बीज से घृणा के धतूरे भी बोये जा सकते हैं और प्रेम के बगीचे भी लगाए जा सकते हैं। शब्द अधीर का सहारा भी बन सकता है और प्रयासरत की निराशा भी। इसलिए शब्द के प्रयोग में बहुत सावधानी बरतनी चाहिए, ख़ासकर तब, जब माहौल हर फूल को पत्थर बनाने पर तुला हो।

ग़ज़ल, शब्द के प्रति ऐसी ही सावधानी बरतने की प्रेरणा देती है। ग़ज़ल में 'भरती' का शब्द होना शायर की क्षमता पर प्रश्नचिह्न लगाता है, इसलिए सामान्यतया प्रत्येक शायर अपनी ग़ज़ल में प्रयोग किए गये प्रत्येक शब्द के प्रति उत्तरदायित्व महसूस करता है। बात क्या कही जा रही है और बात कैसे कही जा रही है - इन दोनों ही पहलुओं को समान रूप से साधते हुए ग़ज़ल कही जाती है। यहाँ कड़वी बात भी कही जाए तो उसमें नरमी की दरकार होती है, क्योंकि यदि लहजा तल्ख़ हो गया तो शेर तो हो जाएगा लेकिन उसमें से तग़ज़्ज़ुल नदारद हो जाएगा।

लहजे की लरजिश बनाये रखिए, और डॉ. वसीम बरेलवी का ये शेर याद रखकर कविग्राम का यह अंक पढ़िए-

कौन सी बात कहाँ, कैसे कही जाती है
ये सलीका हो तो हर बात सुनी जाती है

चिराग़ जैन

ग़ज़ल
मुहब्बत की ज़ुबां

चिराग़ जैन

"ग़ज़ल वो बाँसुरी है, जिसे ज़िन्दगी की हलचल में हमने कहीं खो दिया था। और जिसे ग़ज़ल का शायर कहीं से फिर से ढूंढ लाता है। जिसकी लय सुनकर भगवान की आँखों मे भी इंसान के लिए मुहब्बत के आँसू आ जाते हैं।" -फ़िराक़ गोरखपुरी साहब का यह कथन ग़ज़ल की प्रासंगिकता को रेखांकित करता है।

कविता की दुनिया में ग़ज़ल की अहमियत बताते हुए आल-ए-अहमद-सुरूर कहते हैं कि - "ग़ज़ल हमारी सारी शायरी नहीं है मगर हमारी शायरी का इत्र ज़रूर है।"

ग़ज़ल की सबसे ख़ूबसूरत बात यह है कि चूँकि इसमें दो मिसरों में बात पूरी करनी आवश्यक है, इसलिए न तो इसमें शब्दों का अपव्यय होता है, न ही इसे याद करने के लिए रट्टा लगाना पड़ता है। ग़ज़ल का शेर तो सीधे दिल पर छप जाता है, बशर्ते कि वो ग़ज़ल हो। अल्लम-गल्लम तुकबन्दी का उदाहरण लेकर ग़ज़ल का आकलन किया जाएगा तो आप सही निष्कर्ष पर नहीं पहुँच सकेंगे। इस संदर्भ में दीक्षित दनकौरी साहब का एक शेर यूँ है कि :

शेर अच्छा-बुरा नहीं होता
या तो होता है, या नहीं होता

इसलिए, वो कविता जिसे शेर कहा जा सके; हमारी पूरी चर्चा केवल उन्हीं तक केंद्रित रहेगी। और शेर होने के लिए व्याकरण के मापदंडों से लेकर कहन और तग़ज़्ज़ुल तक सब कुछ महत्वपूर्ण है। ग़ज़ल के विषय मुख़्तलिफ़ हो सकते हैं, ग़ज़ल के तेवर अलग-अलग हो सकते

हैं, ग़ज़ल की भाषा विविध हो सकती है लेकिन ग़ज़ल में ग़ज़ल का होना तो हर हाल ज़रूरी है।

बात को इशारे से कहा जाना, रदीफ़-ओ-क़ाफ़िया की बंदिश का निर्वाह और बहर-ओ-वज़्न के नियमों का पालन तो ग़ज़ल में करना ही होगा। बहुत घिसी-पिटी बातों की तुकबन्दी कर देना भी शायरी नहीं है। मैं अक्सर कहता हूँ कि अच्छी कविता वो है जो या तो नयी बात कहे या फिर किसी पुरानी बात को नये तरीके से कहे। इतना नयापन न हो तो आप अनुवादक हो सकते हैं, कवि नहीं। ग़ज़ल किसी रस विशेष की भी सीमाओं तक नहीं बंधी है। अक्सर कहा जाता है कि ग़ज़ल का मतलब है महबूब से बातचीत। यह कथन आधा सच तो हो सकता है, लेकिन अंतिम सत्य नहीं है।

हिंदी के वीरगाथाकाल की तरह ग़ज़ल की शुरुआत भी आत्ममुग्ध राजाओं की प्रशंसा से ही हुई थी। बाद में इश्क़, माशूक़, जुल्फ़, गेसू, रुख़सार, लब, बोसा, आँसू, साक़ी, मीना, शराब, मय, जाम, रिन्द और मयकशी जैसे अल्फ़ाज़ ग़ज़ल के मुक़द्दर में जड़ दिए गये। यदि हिन्दी कविता से तुलना की जावे तो यह ग़ज़ल का रीतिकाल था।

जैसे-जैसे सूफ़ी आंदोलन तीव्र हुआ, त्यों-त्यों इस्लामिक कर्मकाण्ड के विरुद्ध ग़ज़ल के तेवर तीखे होते चले गए। बन्दगी की राह में बंदों की दख़लअंदाज़ी के ख़िलाफ़ ग़ज़ल ने फ़टकार लगानी भी शुरू कर दी और तंज़ करने में भी पीछे नहीं रही। इस दौर को ग़ज़ल का भक्तिकाल कहा जा सकता है।

इसके बाद समाज की मूलभूत आवश्यकताओं तक ग़ज़ल की पहुँच हुई। जातिवाद, भुखमरी, ग़रीबी, बेरोज़गारी और यहाँ तक कि महामारी जैसे विषयों पर भी ग़ज़ल ने आगे बढ़कर समाज के ज़ख़्म तुरपे हैं।

आज़ादी का आंदोलन चला तो ग़ज़ल क्रांति की ज़ुबान बोल रही थी। आज़ाद हुए तो ग़ज़ल विजय का जश्न मना रही थी। चीन के साथ युद्ध हुआ तो ग़ज़ल सैनिकों और देशवासियों का हौसला बढ़ा रही थी। युद्ध हार गए तो ग़ज़ल ने अपनी सुबकियों को संगीत बनाकर देश के अश्रु पोंछने की कोशिश की। पाकिस्तान से युद्ध लड़ा तो ग़ज़ल फिर

अपने सैनिकों में जोश भरने लगी। आपातकाल लगा तो ग़ज़ल ने तानाशाही सोच को लताड़ने में जी-जान लगा दी। नफ़रतें फैलीं तो ग़ज़ल ने सद्भाव के बीज बोने शुरू कर दिए। सरकारें निरंकुश हुईं तो ग़ज़ल ने लोकतंत्र की जड़ें सींचने की क़वायद शुरू की।

मतलब, ग़ज़ल का इतिहास ठीक वैसा ही है जैसा कविता की किसी अन्य विधा का। या यूँ कहें कि ग़ज़ल ने भी समाज के लिए हर दौर में वही काम किया है जो संगीत, चित्रकला, मूर्तिकला या अन्य किसी कला ने किया। हम ग़ज़ल को 'महबूब से गुफ़्तगू' तक सीमित करके उसके पर नहीं काट सकते।

इस विषय पर राजिन्दर सिंह बेदी का मानना है कि - "ग़ज़ल का शेर किसी खुरदुरेपन का मुतहम्मिल नहीं हो सकता, लेकिन अफ़साना हो सकता है। बल्कि नस्री नज़ाद होने की वजह से उसमें खुरदुरापन होना ही चाहिए, जिससे वो शेर मुमय्यज़ हो सके।"

जैसे हिंदी कविता का छंदशास्त्र संस्कृत भाषा से उद्घाटित हुआ है तो उसमें आज भी संस्कृत भाषा के लक्षण तथा छाप दिखाई देती है। इसका यह अर्थ नहीं है कि संस्कृत और हिंदी के अतिरिक्त अन्य किसी भाषा में पिंगल के छंद प्रयोग नहीं किये जा रहे।

इसी प्रकार ग़ज़ल का व्याकरण अरबी-फ़ारसी से जन्मा है इसलिए इसकी शैली और झलक में फ़ारसी की रवायतें दिखाई देती हैं। लेकिन ग़ज़ल तो दुनिया की तमाम भाषाओं में कही जा रही है। बल्कि उर्दू ने तो ग़ज़ल को इतना पुष्ट किया है, जितना अरबी नहीं कर सकी। यहाँ तक कि हिन्दी और गुजराती में भी ग़ज़ल की एक समृद्ध परम्परा है। दोहा और ग़ज़ल का मतला कोई बहुत अलग नहीं हैं। बस इतना ही फ़र्क है कि हर दोहा एक मतला है लेकिन हर मतला दोहा नहीं है।

भाषा और कला को भी साम्प्रदायिक झरोखे से बाँचकर खाई खोदनेवालों ने ग़ज़ल और उर्दू को एक धर्म विशेष तक सीमित करने की भरसक कोशिश की है, लेकिन भाषाएँ किसी धर्म की पहचान हो सकती हैं, पर दुनिया को कोई भी धर्म किसी भाषा की पहचान नहीं हो सकता। जब बाबा तुलसीदास ने अवधी में रामकथा लिखी तो उस समय ज्ञान के ठेकेदारों ने उनका यह कहकर उपहास किया कि

कविता भी भला संस्कृत के सिवाय किसी भाषा में हो सकती है! लेकिन उस उपहास और तिरस्कार के पार तुलसी अपनी अवधी की रामचरितमानस से रामकथा के पर्याय बन गए। यह घटना इस बात का प्रमाण है कि नयी परम्परा को पनपने से रोकने के लिए पहले से स्थापित लोग अक्सर पुरानी रवायतों का हवाला देते हैं। कबीरदास जी ने सधुक्कड़ी भाषा में ग़ज़ल कही :

हमन है इश्क मस्ताना हमन को होशियारी क्या
रहें आजाद या जग से हमें दुनिया से यारी क्या

इसी बात के आसपास मिर्ज़ा असदुल्लाह ग़ालिब ने कहा–

फ़िक्र-ए-दुनिया में सर खपाता हूँ
मैं कहाँ और ये वबाल कहाँ

कविता संवेदना की ज़ुबान है और संवेदना किसी एक धर्म तक सीमित नहीं हो सकती। आपके भीतर की मनुष्यता कितनी मुखर है, इससे यह तय होता है कि आपके भीतर का रचनाकार कितना प्रभावी होगा। यदि आपका कबीर प्रखर है तो ढोंग, ढकोसलों और ठगी पर बात करते हुए आपको न तो भय लगेगा और न ही आप कोई भेदभाव कर पाएंगे।

इस्लाम में सूफ़ी शायरी की एक महती परम्परा रही है। यहाँ मैं यह बात स्पष्ट कर दूँ कि कविता ने जब भी धर्म से सम्बद्ध किसी विषय पर क़लम चलाई है तो उसका उद्देश्य ईश्वर की मुख़ालफ़त करना नहीं रहा, बल्कि उनका प्रयास रहा है कि स्वयं को ईश्वर का ठेकेदार मानने वाले उन मनुष्यों का पर्दाफ़ाश किया जाए तो आस्थावान जनता की भावनाओं को ठगकर अपने स्वार्थ साधने में संलग्न हैं। ग़ज़ल इस मुआमले में काफ़ी समृद्ध रही है। कुछ अशआर देखें :

ज़ाहिद शराब पीने दे मस्जिद में बैठकर
या वो जगह बता दे जहाँ पर ख़ुदा न हो
अज्ञात

ज़ाहिद शराब पीने से काफ़िर हुआ मैं क्यूँ
क्या डेढ़ चुल्लू पानी में ईमान बह गया
शेख़ इब्राहीम ज़ौक़

किधर से बर्क़ चमकती है देखें ऐ वाइज़
मैं अपना जाम उठाता हूँ, तू किताब उठा
जिगर मुरादाबादी

हमें भी जलवागाह-ए-नाज़ तक लेकर चलो मूसा
तुम्हें गश आ गया तो हुस्न-ए-जाना कौन देखेगा
-अज्ञात

काफ़िर हूँ, सरफिरा हूँ, मुझे मार दीजिए
मैं सोचने लगा हूँ, मुझे मार दीजिए
अहमद फ़राज़

ऐसे ही सैंकड़ों उदाहरण दुनिया की हर भाषा के साहित्य में मिलेंगे। ग़ज़ल भी इससे अछूती नहीं है। कविता का दायित्व है कि वह समाज को अपना घर मानते हुए समाज में व्याप्त वैचारिक कचरे को साफ करे और ख़ूबसूरत ख़यालात से अपने आंगन में रंगोली सजाए। समूची मनुष्यता से मुहब्बत का पैग़ाम साहित्य का दायित्व है। जो यह दायित्व न निबाह सका उसने अपनी कुण्ठाओं को जिल्द में बांधकर मानवता को भयंकर चोट पहुँचाई है। सलीम कौसर साहब ने इस संदर्भ में एक शेर यूँ कहा कि-

इश्क़ जिससे न हो सका उसने
शायरी में अजब सियासत की

कविता स्वार्थ की हवाओं के बीच समर्पण का दीपक बालने का कौशल है। कविता उन्माद की आंधी में विवेक जागृत करने का हठयोग है। कविता ध्वंस से सृजन का संघर्ष है। कविता प्रतिशोध की टीस पर क्षमा का मरहम रखने का उपक्रम है। कविता मनुष्य को बेहतर मनुष्य बनाने की साधना है। कविता युगों से पूरी मनुष्यता को जोड़ने की तपस्या कर रही है। यदि आपके पास ऐसा कोई उदाहरण हो जो घृणा बोकर, मानव को मानव से लड़वाने की प्रेरणा देता है तो उसे कविता कहकर 'काव्य' को बदनाम न कीजियेगा। चलते-चलते जिगर साहब के एक शेर पढ़ लीजिए :

उनका जो फ़र्ज़ है वो अहल-ए-सियासत जानें
मेरा पैग़ाम मुहब्बत है, जहाँ तक पहुँचे

चिराग़ जैन

हमन है इश्क़ मस्ताना

कबीरदास

हमन है इश्क़ मस्ताना, हमन को होशियारी क्या,
रहें आजाद या जग में, हमन दुनिया से यारी क्या

जो बिछड़े हैं पियारे से, भटकते दर-ब-दर फिरते
हमारा यार है हम में, हमन को इंतज़ारी क्या

खलक सब नाम जपने को, बहुत कर सिर पटकता है,
हमन गुरु नाम साँचा है, हमन दुनिया से यारी क्या

न पल बिछड़ें पिया हमसे, न हम बिछड़ें पियारे से
उन्हीं से नेह लागी है, हमन को बेक़रारी क्या

कबीरा इश्क़ का नाता, दुई को दूर कर दिल से,
जो चलना राह नाजुक है, हमन सिर बोझ भारी क्या

कबीरदास

इस नदी की धार में ठंडी हवा आती तो है
नाव जर्जर ही सही, लहरों से टकराती तो है

सब के सब परीशां हैं

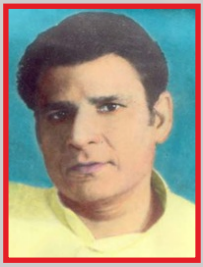

दुष्यन्त कुमार

ये सारा जिस्म झुककर बोझ से दुहरा हुआ होगा
मैं सजदे में नहीं था आपको धोखा हुआ होगा

यहाँ तक आते-आते सूख जाती हैं कई नदियाँ
मुझे मालूम है पानी कहाँ ठहरा हुआ होगा

ग़ज़ब ये है कि अपनी मौत की आहट नहीं सुनते
वो सब के सब परीशां हैं वहाँ पर क्या हुआ होगा

तुम्हारे शहर में ये शोर सुन-सुनकर तो लगता है
कि इंसानों के जंगल में कोई हाँका हुआ होगा

कई फ़ाक़े बिताकर मर गया जो उसके बारे में
वो सब कहते हैं अब, ऐसा नहीं, ऐसा हुआ होगा

यहाँ तो सिर्फ़ गूंगे और बहरे लोग बसते हैं
ख़ुदा जाने वहाँ पर किस तरह जलसा हुआ होगा

चलो, अब यादगारों की अँधेरी कोठरी खोलें
कम-अज-कम एक वो चेहरा तो पहचाना हुआ होगा

दुष्यन्त कुमार

आग़ाज़ तो होता है अंजाम नहीं होता
जब मेरी कहानी में वो नाम नहीं होता

कोई तो पार गुज़रे

मीना कुमारी नाज़

यूँ तेरी रहगुज़र से दीवाना-वार गुज़रे
कांधे पे अपने रख के अपना मज़ार गुज़रे

बैठे हैं रास्ते में दिल का खंडर सजाकर
शायद इसी तरफ़ से इक दिन बहार गुज़रे

दार-ओ-रसन से दिल तक सब रास्ते अधूरे
जो एक बार गुज़रे वो बार-बार गुज़रे

बहती हुई ये नदिया, घुलते हुए किनारे
कोई तो पार उतरे, कोई तो पार गुज़रे

मस्जिद के ज़ेर-ए-साया बैठे तो थक-थकाकर
बोला हर इक मिनारा तुझ से हज़ार गुज़रे

क़ुर्बान इस नज़र पे मरियम की सादगी भी
साये से जिस नज़र के सौ किर्दगार गुज़रे

तूने भी हमको देखा हमने भी तुझको देखा
तू दिल ही हार गुज़रा, हम जान हार गुज़रे

मीना कुमारी

काजू भुने पलेट में, व्हिस्की गिलास में
उतरा है रामराज विधायक निवास में

डूबना आसान है

अदम गोंडवी

ज़ुल्फ़ अंगड़ाई तबस्सुम चांद आईना गुलाब
भुखमरी के मोर्चे पर ढल गया इनका शबाब

पेट के भूगोल में उलझा हुआ है आदमी
इस अहद में किसको फ़ुर्सत है पढ़े दिल की किताब

इस सदी की तिश्नगी का ज़ख़्म होंठों पर लिए
बेयक़ीनी के सफ़र में ज़िन्दगी है इक अजाब

डाल पर मज़हब की पैहम खिल रहे दंगों के फूल
सभ्यता रजनीश के हम्माम में है बेनक़ाब

चार दिन फुटपाथ के साये में रहकर देखिए
डूबना आसान है आँखों के सागर में जनाब

अदम गोंडवी

दोनों ही पक्ष आए हैं तैयारियों के साथ
हम गर्दनों के साथ हैं वो आरियों के साथ

हिचकियाँ अच्छी लगीं

डॉ. कुँअर बेचैन

दुलहिनों के भाल-चिपकी बिन्दियाँ अच्छी लगीं
फूल से लिपटी हुई ये तितलियाँ अच्छी लगीं

आज तेरा नाम जैसे ही लिया वो रुक गयीं
आज सच पूछो तो अपनी हिचकियाँ अच्छी लगीं

जब से मैं गिनने लगा इन पर तेरे आने के दिन
बस तभी से मुझको अपनी उंगलियाँ अच्छी लगीं

प्यार के त्योहार पर वो मांग भरती दुलहिनें
और वो मेंहदी रचाती लड़कियाँ अच्छी लगीं

बंद आँखों-सी किसी के ध्यान में डूबी हुईं
धीरे-धीरे जो खुलीं वो खिड़कियाँ अच्छी लगीं

फूल-जैसे सुर्ख़ होठों के निशां देने के बाद
उसने जो रख लीं वो मेरी चिट्ठियाँ अच्छी लगीं

प्यास के मिटते ही ये क्या है कि मर जाता है प्यार
जब बढ़ीं नज़दीकियाँ तो दूरियाँ अच्छी लगीं

जिनके आंगन में अमीरी का शजर लगता है
उनका हर ऐब ज़माने को हुनर लगता है

प्यार करना चाहिए

अंजुम रहबर

रंग इस मौसम में भरना चाहिए
सोचती हूँ प्यार करना चाहिए

ज़िन्दगी को ज़िन्दगी के वास्ते
रोज़ जीना, रोज़ मरना चाहिए

दोस्ती से तजरबा ये हो गया
दुश्मनों से प्यार करना चाहिए

प्यार का इक़रार दिल में हो मगर
कोई पूछे तो मुकरना चाहिए

अंजुम रहबर

उस ने यूँ रास्ता दिया मुझको
रास्ते से हटा दिया मुझको

...तो कोई बात नहीं

अक्स समस्तीपुरी

अगर जो प्यार ख़ता है तो कोई बात नहीं
क़ज़ा ही उसकी सज़ा है तो कोई बात नहीं

तू सिर्फ़ मेरी है इस का ग़ुरूर है मुझको
अगर ये वहम मेरा है तो कोई बात नहीं

मुआफ़ करने की आदत नहीं है वैसे तो
अगर ये तीर तेरा है तो कोई बात नहीं

बिना बदन के तअल्लुक़ बचा नहीं सकते
यही जो रस्ता बचा है तो कोई बात नहीं

हाँ, मेरे बाद किसी और का न हो जाना
तू आज मुझसे जुदा है तो कोई बात नहीं

अक्स समस्तीपुरी

अब न दीवार से शिकवा है न साए की तलब
धूप जब मेरा मुक़द्दर है तो फिर ग़म कैसा

ऐसे भी कुछ चिराग़

सिया सचदेव

हमने चाहा उसे उसी के बग़ैर
काट दी उम्र ज़िन्दगी के बग़ैर

ऐसे भी कुछ चिराग़ होते हैं
जलते रहते हैं रौशनी के बग़ैर

हो गये पार हम तसव्वुर में
नाव चलती रही नदी के बग़ैर

ज़ब्त क्या है ये पूछिए हमसे
मुस्कुराये हैं हम ख़ुशी के बग़ैर

घुट के रह जायेगा अकेले में
आदमी क्या हैं आदमी के बग़ैर

सिया सचदेव

ख़ुदा ख़ैर करे

'पॉपुलर' मेरठी

एक बीवी कई साले हैं ख़ुदा ख़ैर करे
खाल सब खींचनेवाले हैं ख़ुदा ख़ैर करे

तन के वो उजले नज़र आते हैं जितने यारो
मन के वो इतने ही काले हैं ख़ुदा ख़ैर करे

कूचा-ए-यार का तय होगा सफ़र अब कैसे
पाँव में छाले ही छाले हैं ख़ुदा ख़ैर करे

मेरा ससुराल में कोई भी तरफ़दार नहीं
उन के होंठों पे भी ताले हैं ख़ुदा ख़ैर करे

क्या तअज्जुब है किसी रोज़ हमें भी डस लें
साँप कुछ हमने ही पाले हैं ख़ुदा ख़ैर करे

ऐसी तब्दीली तो हमने कभी देखी, न सुनी
अब अंधेरे न उजाले हैं ख़ुदा ख़ैर करे

हर वरक़ पर है छपी ग़ैर-मोहज़्ज़ब तस्वीर
कितने बेहूदा रिसाले हैं ख़ुदा ख़ैर करे

'पॉपुलर' हाथ में कट्टा है तो बस्ते में हैं बम
बच्चे भी कितने जियाले हैं ख़ुदा ख़ैर करे

भले ही धूप हो, काँटे हों पर चलना ही पड़ता है
किसी प्यासे को घर बैठे कभी दरिया नहीं मिलता

क्या-क्या चल रहा है

अशोक अंजुम

खरा गुमनाम, खोटा चल रहा है
अज़ब सिस्टम है क्या-क्या चल रहा है

नहीं है प्यार को थोड़ी जगह भी
मगर हैरत है रिश्ता चल रहा है

है बाज़ारों में जिस्मों की नुमाइश
वहीं घर बीच पर्दा चल रहा है

कहीं ज़िन्दा भी ग़ायब हो रहे हैं
कहीं फाइल में मुर्दा चल रहा है

जिसे में फेंक आया था सड़क पर
सियासत में वो सिक्का चल रहा है

मन कह रह्यौ है

नवीन सी. चतुर्वेदी

अपनी खुसी सूँ थोरें ई सब नें करी सही
बौहरे नें दाब-दूब कें करबा लई सही

जै सोच कें ई सबनें उमर भर दई सही
समझे कि अब की बार की है आखरी सही

पहली सही नें लूट लयो सगरौ चैन-चान
अब और का हरैगी मरी दूसरी सही

मन कह रह्यौ है बौहरे की बहियन कूँ फार दऊँ
फिर देखूँ काँ सों लाउतै पुरखान की सही

धौंताए सूँ नहर पे खड़ो है मुनीम साब
रुक्का पे लेयगौ मेरी सायद नई सही

म्हाँ- म्हाँ जमीन आग उगल रइ ए आज तक
घर-घर परी ही बन कें जहाँ बीजरी सही

तो कूँ भी जो 'नवीन' पसंद आबै मेरी बात।
तौ कर गजल पे अपने सगे-गाम की सही

नवीन सी. चतुर्वेदी

श्रीमती माया गोविन्द
जन्म : 17 जनवरी 1940
निधन : 07 अप्रेल 2022

जीवन के सौदागर बोल
मिट्टी का क्या होगा मोल?

समय-पतंग उड़ाते हैं
कुछ खोते कुछ पाते हैं
चेहरे पे मकड़ी-जाला
नैनों में मोती छाला
क़फ़न समेटे तन का झोल
मिट्टी का क्या होगा मोल?

सौदागर ये मिट्टी ले
मिट्टी का कण-कण गिन दे
बात मेरी सब सच्ची है
ये कच्ची की कच्ची है
सस्ते में बेचूँ अनमोल!
मिट्टी का क्या होगा मोल?

KAVIGRAM

माया गोविन्द जी
एक कवि-सम्मेलन के मंच पर।
साथ में (सबसे दाहिने) श्री जैमिनी हरियाणवी

चित्र साभार : श्री अरुण जैमिनी

कवि-सम्मेलन संग्रहालय में कवि-सम्मेलन के पुराने चित्र, निमन्त्रण पत्र, चिट्ठियाँ, कतरनें तथा अन्य दस्तावेजों को संग्रहीत करने का कार्य प्रगति पर है। दाहिनी ओर दिये गये लिंक पर स्पर्श

कवि सम्मेलन संग्रहालय

गद्य-पद्य की साधिका

सुमित्रा कुमारी सिन्हा

सोनरूपा विशाल

सन् 1913 में फ़ैज़ाबाद, उत्तर प्रदेश में जन्मी सुमित्रा कुमारी सिन्हा अपने समय की एक बेहद प्रशंसित, चर्चित एवं उल्लेखनीय लेखिका रहीं। उन्हें छायावाद और यथार्थवाद के सेतु के रूप में जाना जाता है।

इन्होंने अपने साहित्यिक जीवन का प्रारम्भ कवयित्री के रूप में किया था। प्रथम काव्य संकलन 'विहाग' के लिए इन्हें इलाहाबाद में एक प्रतिष्ठित सम्मान से सम्मानित किया गया। बाल-उपयोगी साहित्य और रेडियो रूपक के क्षेत्र में भी इन्होंने व्यापक लेखन किया। इनके तीन काव्य-संग्रह 'विहाग', 'आशापर्व' और 'बोलों के देवता' प्रकाशित हैं।

आज से इतने वर्ष पूर्व जब स्त्रियों का जीवन अत्यंत विसंगतियों भरा था, ऐसे समय में भी सुमित्रा जी की कविताओं में अपने अस्तित्व और स्वाभिमान के प्रति सजग रहने वाली स्त्री नज़र आती है। कुल सत्रह वर्ष की उम्र में सुमित्रा जी का विवाह हो गया। पति ज़मींदार परिवार से थे। साहित्यिक और सामाजिक जीवन में पति का इन्हें ख़ूब सहयोग मिला। सुमित्रा जी तीन बेटों एवं एक बेटी (अजीत कुमार, अभय शंकर चौधरी, अमलेंद्र चौधरी और कीर्ति चौधरी) की माँ बनीं। अजीत कुमार एवं कीर्ति चौधरी ने प्रसिद्ध साहित्यकार के रूप में पहचान बनायी। कीर्ति जी तार सप्तक में भी शामिल हुईं।

सुमित्रा कुमारी सिन्हा जी ने वादों और सम्प्रदायों से हमेशा ख़ुद को दूर रखा और तटस्थ रूप से तत्कालीन समस्याओं को अपनी रचनाओं के माध्यम से उकेरा।

उनके व्यक्तित्व का एक सुंदर पहलू उनका सुधारवादी दृष्टिकोण है। उन्होंने कई संगठनों की स्थापना की और समाज के हित में कार्य किये। उनमें नेतृत्व क्षमता प्रबल थी। लखनऊ के एक सामाजिक केंद्र में भी उन्हें नियुक्ति मिली। सुमित्रा जी की 23 कहानियाँ हैं जो दो संकलनों में प्रकाशित हैं। इन संग्रहों के नाम हैं: 'वर्षगाँठ' और 'अचल सुहाग'। इनकी कहानियों में स्त्री-हित एवं सामाजिक-हित में उनका स्वर मुखर हुआ है। इनकी रचनाओं के माध्यम से हमें तत्कालीन समय में स्त्रियों की स्थिति का चित्रण बहुत बारीकी से दिखायी देता है। सुमित्रा जी की अन्य रचनाएँ हैं: 'पंथिनी'; 'प्रसारिका'; 'वैज्ञानिक बोधमाला'; 'कथा कुंज'; 'आंगन के फूल'; 'फूलों के गहने'; 'आँचल के फूल' तथा 'दादी का मटका'।

पुराने समय के रूढ़िगत समाज को देखते हुए सुमित्रा जी कवि सम्मेलनों, संस्थानों इत्यादि के कार्यक्रमों में पति के साथ जाने को विवश थीं लेकिन वे स्वभाव से विद्रोहिणी थीं। उन्होंने शादी के बाद भी अपनी पढ़ाई जारी रखी और नौकरी भी की।

कवि-सम्मेलनों में मधुर कंठ से कविता-पाठ करने वाली सुमित्रा कुमारी सिन्हा आकाशवाणी लखनऊ से सम्बद्ध रहीं। 30 सितंबर 1994 को सुमित्रा जी का निधन हो गया।

सुमित्रा कुमारी सिन्हा जी का एक गीत पढ़कर आप उनकी लेखनी के तेवर का अनुमान कर सकते हैं:

तुम्हारे प्यार के दो-चार क्षण पाकर

न जानी राह की दूरी, थकन दुःख-दर्द सब भूली
खिली, ज्यों फूल खिलता है-
तुम्हारी चांदनी में डूब-उतराकर

अमर मैं बन गयी क्षण में, नखत-सा बन गया जीवन
उठी, ज्यों गीत उठता है-
तुम्हारी बाँसुरी से मुग्ध लहराकर

हुए सच प्रात के सपने, भरे गति से अचेतन भी
चली, ज्यों वायु चलती है-
तुम्हारी साँस से लय तान गति पाकर

अंग्रेज़ी नहीं आती क्या?

प्रो. अशोक चक्रधर

भाग 6

ऑस्ट्रेलिया के धुर-पूर्व मलमबिंबी, बायरन बे इलाके में, पुत्र-पुत्रवधू के पास आये हुए पचास दिन हो गये हैं। हर दिन सूर्योदय की विविध झाँकियाँ देखने के चक्कर में, जल्दी उठ जाता हूँ। कून्यम पहाड़ियों की शृंखला के लंबे विस्तार के ऊपर जगह बदलती हुई सूरज की स्पॉट लाइट्स निहारता हूँ। बादल अपनी तरह-तरह की लीलाएँ दिखा रहे होते हैं। कभी सघन, कभी विरल। कभी मदमस्त दौड़ लगाते, कभी एकदम स्थिर होकर अपनी अरुणिमा बढ़ाते हुए, ठिठके से। कभी धारासार बरसते हुए प्रलयंकारी। आकाश के पटल पर हर दिन मैंने यहाँ एक नयी चित्रशाला देखी है।

ऑस्ट्रेलिया की एक सुबह आकाश पर बादलों की चित्रकारी

अभी दो दिन पहले एक आश्चर्य से घिर गया। मैं सूर्याेदय के समय पश्चिम दिशा को देख रहा था। यानी, सूर्याेदय मेरे पीछे की ओर होने वाला था। अचानक एक बात पर ध्यान गया। अरे ये क्या! बादल ऐसी संतुलित समानांतर रेखाओं में कटे हुए, फूटती हुई किरणों की शैली में इतने व्यवस्थित कैसे दिखायी दे रहे हैं? ऐसे, जैसे किसी महाशक्ति ने आकाश में ज्यामितिक इंस्टॉलेशन आर्ट प्रस्तुत की हो। प्रतिपल परिवर्तित होने वाला बादलों का समूह किसके कौशल से एक अनुशासन में कतारबद्ध हो गया? बादल हैं या सहस्रबाहु की सीधी उंगलियाँ! सूरज को छोड़कर उनके घोड़े उत्तर दिशा में कैसे आ गये, और बादलों की रस्सियों से बंधे दक्षिण की ओर क्यों दौड़े जा रहे हैं? कहीं ब्रह्मांड के महानायक ने बादलों की पीठ पर अपनी उंगलियाँ तो नहीं फिरा दीं, जैसे कभी गिलहरी की पीठ पर फिरायी थीं? कहीं नॉर्थ कोरिया के शासक ने तो मिसाइल की फूँक मारकर बादलों को अपनी सेना में कतारबद्ध नहीं कर लिया?

ओह्हो! उपमाएँ जब बिंब बनकर आती हैं तो इतिहास, भूगोल, पुराण, वर्तमान और भविष्य सब गड्डमड्ड हो जाते हैं। दरअस्ल, हमारे अवचेतन में ऐसी बहुत सारी बातें भरी रहती हैं, जिनका आपस में कोई तारतम्य नहीं होता, लेकिन उस प्राचीन भंडार की कोई एक मिलती-जुलती सी बात, अचानक आकर, बिंबमाला में एक नई क्रमिकता का निर्माण कर देती है। नॉर्थ कोरिया का शासक बादलों से कैसे जुड़ गया? हो सकता है मेरे अवचेतन में सोवियत संघ की वह घटना स्मृति-कोश से निकल आयी हो, जब मैं सन् 1987 में भारत महोत्सव का आँखों देखा हाल सुनाने के लिए मॉस्को गया था। उद्घाटन समारोह वहाँ के लेनिन स्टेडियम में होना था। कई लाख दर्शकों की क्षमता वाला काफ़ी बड़ा मुक्ताकाशी स्टेडियम था। यहीं भारत से गये हमारे एक हज़ार से अधिक लोक-नर्तकों, लोक कलाकारों, अनेक क्षेत्रों के रचनात्मक कलाकर्मियों और मीडियाकर्मियों को एक वर्ष तक चलनेवाले 'भारत महोत्सव' के पहले दिन अपना-अपना कर्म-कौशल दिखाना था, लेकिन, स्टेडियम के ऊपर छाये घने बादलों के कारण बरसात की आशंका बनी हुई थी। कहीं सबकी मेहनत पर बरसात न फिर जाय! लेकिन, उद्घाटन समारोह से कुछ समय पहले अचानक, स्टेडियम में बैठे हुए और अंदर आते हुए सभी ने देखा कि बादल छँटना शुरू हो गये। दस मिनट के अंदर ही सारे के सारे बादल, पता नहीं कहाँ चले गये। धूप

की रौशनी में दृश्य दूर तक देखे जाने योग्य हो गये। किसी ने मज़ाक में और किसी ने गंभीरता से कहा, महाशक्तिशाली सोवियत संघ ने बादल उड़ाने के लिए छोटी-मोटी कोई मिसाइल छोड़ दी होगी। कुछ भी सम्भव था। आधिकारिक रूप से कुछ पता नहीं चला क्योंकि सोवियत संघ में अधिक पूछने की मनाही होती थी।

ख़ैर जी! पिछली बार 'कवितैव कुटुम्बकम्' के कथा-कथन में हम अभी तक दिल्ली से चले विमान में ही बैठे थे, मॉस्को उतरे ही कहाँ थे। पहले, क़ायदे से मॉस्को पहुँच जाएँ, फिर उद्घाटन समारोह की बात होगी।

तो जी! सोवियत संघ की धरती पर उतरते ही शानदार अनुभूति हुई। मैंने पश्चिम का विदेशी और रूसी साहित्य काफ़ी पढ़ रखा था, लगा जैसे उपन्यासों से सारे के सारे पात्र निकल आये हैं और एअरपोर्ट पर टहल रहे हैं। हतप्रभ-सा चारों ओर निहार रहा था। अचानक एक भारतीय अधिकारी ने पूछा- 'आप किस भाषा में दुभाषिया चाहेंगे, हिंदी में या अंग्रेज़ी में?' ज़ाहिर-सी बात है, मैंने हिंदी दुभाषिया चाहा। दुभाषिया-सुविधा लोक कलाकारों को नहीं थी। सरकारी अधिकारियों, टोली नायकों, और हम आकाशवाणी-दूरदर्शन के कमैंट्रेटर्स को थी। मुझे यह बताते हुए अफ़सोस है कि सरकारी तंत्र के लगभग सभी लोगों ने अंग्रेज़ी दुभाषिया चाहा। भारत महोत्सव के कर्ता-धर्ता अंग्रेज़ीदां लोग थे। मॉस्को की हवाई-पट्टी पर जब हमारा जहाज़ उतरा होगा तब हमारे मेज़बानों को पता नहीं रहा होगा कि रनवे पर दौड़ती हुई अंग्रेज़ी उतरी है।

अब चूँकि अधिकांश ने अंग्रेज़ी दुभाषिया ही चाहा था, तो उन्होंने इमिग्रेशन के सारे काग़ज़ात देखने के बाद सबके लिए अंग्रेज़ी दुभाषिये तैनात कर दिये। मैं अफ़सोस करता रह गया, मैंने तो हिंदी दुभाषिया चाहा था। मुस्कराती हुई एक लम्बी बलिष्ठ-सी कन्या मिली जिसने रूसी अंदाज़ की अंग्रेज़ी में बताया कि उसका नाम तान्या है और वह मेरे साथ इंटरप्रेटर बनकर रहेगी। मैंने उससे पूछाकृ 'डू यू नो हिंदी?', उसने जवाब दिया- 'नो'। यह तो बड़े संकट की बात हो गयी। अंग्रेज़ी मुझे नहीं आती ऐसी बात नहीं, पर जिस भाषा में अपने आपको अच्छी तरह अभिव्यक्त किया जा सकता था, वह तो हिंदी ही थी। हाय-हाय, ये कन्या मेरे मत्थे क्यों मढ़ दी गयी, जबकि हिंदी का विकल्प मौजूद था। मैंने अपने दल के मुखिया, दूरदर्शन के महानिदेशक श्री शिव शर्मा को अपनी असुविधा बताई तो उन्होंने मुझे दयनीय दृष्टि से देखा, और पूछ

ही लिया- 'अंग्रेज़ी नहीं आती क्या?' मैं मुस्कुराकर नौकरशाही द्वारा किये गये अपने अपमान को पी गया।

मैं उन्हें कैसे बताता कि जब मैं 1968 में बीएससी कर रहा था तो सारे प्रश्नपत्रों का उत्तर अंग्रेज़ी में देता था, 1973 में दिल्ली में अपने एक अध्यापक साथी और अंग्रेज़ी के अच्छे कवि शाहिद की कविताओं का अनुवाद हिंदी में कर चुका था और शब्दकोशों और मित्रों की मदद से प्रसिद्ध इतिहासकार ई. एच. कार की अंग्रेज़ी पुस्तक 'व्हाट इज़ हिस्ट्री' का हिंदी अनुवाद 'इतिहास क्या है' शीर्षक से भी कर चुका था, जिसे वर्ष 1979 में मैकमिलन कं. ऑफ़ इंडिया, नई दिल्ली ने प्रकाशित किया। और तो और यह भी याद दिलाना मैंने उचित नहीं समझा कि महात्मा गांधी जब विदेश से भारत लौटे थे और स्वाधीनता संग्राम के विभिन्न आंदोलनों में लगे हुए थे, तब उन्होंने कहा था कि 'कह दो पूरी दुनिया से कि गांधी अंग्रेज़ी भूल गया है।'

मैं अंग्रेज़ी भूला तो नहीं था पर याद भी नहीं रखना चाहता था। हिंदी का प्रबल समर्थक था। अंग्रेज़ीदां भारतीयों के बीच अपनी बात हिंदी में ही करते हुए सहज रहता था, क्योंकि जानता था कि सभी को हिंदी आती है। हवाई अड्डे पर मुझे कवि-सम्मेलन मंच के अपने वरिष्ठ और समकालीन कवियों की हिंदी वंदनाएँ याद आने लगीं जिन पर असंख्य श्रोताओं की अपरिमित तालियाँ बजा करती थीं। जैसे, 'करता हूँ तन-मन से वंदन, अपनेपन की परिभाषा का, अभिनंदन अपनी संस्कृति का आराधन अपनी भाषा का', श्री सोम ठाकुर का गीत।

मेरा एक अनुजवत कवि-मित्र अनिल जनविजय मॉस्को में है और वहाँ रेडियो पर काम करता है, यह जानकारी मैं भारत से लेकर आया था। मैंने फ़ोन मिलाया और सौभाग्य देखिए कि पहली बार में ही उनसे बात हो गयी। वे मुझसे मिलने के लिए मुझसे ज़्यादा उतावले थे। जहाँ तक याद पड़ता है, मॉस्को पहुँचने के छः-सात घंटे बाद ही अनिल मुझे मिल गये। एक कमी जो मुझे अखर रही थी, दुभाषिये की, उसका भी निदान हो गया, क्योंकि अनिल बहुत अच्छी रूसी जानते थे। हिंदी के कवि तो वे थे ही।

अनिल जनविजय ने खासी मदद की। अगले दिन जब वे मुझे रेडियो स्टेशन ले जाने लगे तो मेरी दुभाषिया तान्या उनसे रूसी में तरह-तरह के सवाल पूछने लगी- कहाँ जाना है, क्यों जाना है, किसकी अनुमति

है, वगैरा-वगैरा। होटल से बाहर निकलने के बाद तान्या एक पल के लिए भी मुझे अकेला नहीं छोड़ती थी। साये की तरह साथ लगी रहती थी। मॉस्को रेडियो के लिए लिफ़्ट में जाते हुए अनिल ने तान्या से रूसी में पूछा- 'तुम्हें हिंदी आती है?' 'नियत' कहकर उसने मना कर दिया। अनिल अब निश्चिंत भाव से उसकी आलोचना करने लगे- 'ये जितनी भी दुभाषिया लड़कियाँ हैं, इनमें अधिकांश गुप्तचर एजेंसी की हैं। और ये तो एकदम उदासीन और कामचोर लग रही है। काया देखिए इसकी, खा-खा कर कैसी मोटी हो रही है'। मैंने कहा- 'स्वस्थ सोवियत नारी है, क्या हुआ जो थोड़ी भारी है? लेकिन क्या ये केजीबी की होगी?' अनिल ने एकदम आँख निकालते हुए कहा- 'ये शब्द अपने मुँह से मत निकालिये। गुप्तचर बोलिए गुप्तचर'। मुझसे ग़लती हो चुकी थी। बात को संभालते हुए मैंने कहा- 'मैं तो कोमल जी बी सिंह की बात कर रहा था। बताओ! वो हैं कि नहीं केजीबी?' अनिल मुस्कुराये, पर चेतावनी में मुझे पुनः आँखें दिखायीं। तान्या कुछ समझने की कोशिश करती हुई सी दिख रही थी। मैंने तान्या से कहा- 'डू यू नो कोमल जी बी सिंह? शी वॉज़ देयर ऐट द एअरपोर्ट। वैरी गुड एंड स्मार्ट इंग्लिश कमंट्रेटर। वी कॉल हर केजीबी'। इस पर तान्या ने कोई प्रतिक्रिया नहीं जतायी। अनिल ने अपनी बात फिर से दोहरायी- 'ये शब्द मुँह से मत निकालिये अशोक जी। यहाँ लिफ़्ट के भी कान होते हैं। ये गौरवर्णा देवी फँसवा देगी आपको'। लिफ़्ट से बाहर निकले तो तान्या ने सतर्कता से इधर-उधर देखने के बाद अनिल से प्रवाहपूर्ण शुद्ध हिंदी में कहा- 'आपके विचारों से मैं सहमत नहीं हूँ, महोदय!'

इतनी अच्छी हिंदी जानती थी, और कह रही थी कि हिंदी नहीं जानती। हम दोनों पानी-पानी हो गये, लेकिन लिफ़्ट-संवाद का फ़ायदा ये हुआ कि उसके बाद मैं तान्या से हिंदी में बात करने लगा और वह भी हमारे स्वभाव से परिचित होने के बाद सहज हो गयी। अनिल जी ने उसे अच्छी हिंदी पुस्तकें देने का वादा किया। वह हमारी मित्र बन गयी। भूल गयी कि वह इंटरप्रेटर है या केजीबी की एजेंट है या मेरे साथ फ़कत कुछ समय के लिए ही है। जब तक साथ रही उसने भरपूर मदद की। कार्मिक सान्निध्य के दौरान मैंने पाया कि तान्या को और भी भाषाएं आती थीं और सबसे अधिक आती थी भारत के प्रति प्रेम की भाषा। मेरे मन-मस्तिष्क के सारे बादल तान्या के स्नेहिल सम्मान में कतारबद्ध खड़े हो गये। अशोक चक्रधर

ग़ालिब के परसाई

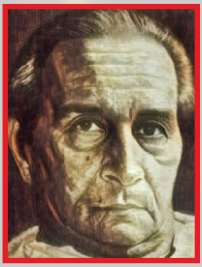

हरिशंकर परसाई

तमाम दूबों, चौबों, तिवारियों, वर्माओं, श्रीवास्तवों, मिश्रों को चुनौती है - बता दे कोई, अगर ग़ालिब के पूरे दीवान में कहीं किसी का ज़िक्र हो। कबीरदास ने अलबत्ता हमारे पड़ोसी पाण्डेय जी का नाम लिखा है -"साधो पांडे निपट कुचालि।" इससे पांडे जी कबीर से बहुत नाराज़ है। मगर ग़ालिब ने लगातार दो शेरो में परसाईजी को याद किया है। मुलाहजा हो-

पए-नज़्रे-करम तोहफा है शर्मे न रसाई का
ब-ख़ूं-गल्तीदा-ए-सद-रंग दावा पारसाई का

न हो हुस्ने तमाशा दोस्त रुस्वा बेवफाई का
बमुहरे-सद-नज़र साबित है दावा पारसाई का

मेरा दावा इन शेरो से साबित होता जाता है। कहता हूँ सच कि झूठ की आदत नहीं मुझे।

ग़ालिब ने मेरे लिए इतना किया है कि ख़ुदा और प्रेमिका के बाद परसाई को याद किया है। मेरा भी उनके प्रति कुछ फ़र्ज़ हो जाता है। मैं पूरी कोशिश कर रहा हूँ कि उनकी याद में जलसा क़ामयाब हो। इस साल टोटल 17215 समारोह ग़ालिब की याद में होंगे। इतने समारोहों के उद्घाटन के लिए इतने साधारण विद्वान नहीं मिलेंगे। पर देश में पंचायती विद्वानों की कमी नहीं है। कल ही एक पंचायती विद्वान का भाषण सुन रहा था। वे कह रहे थे -ग़ालिब? अहा! ग़ालिब महान कवि थे! अहा! ग़ालिब महान शायर थे। अहा! मिर्जा ग़ालिब के क्या कहना है, अहा!'

मैं पंचायती विद्वान की तक़लीफ़ देख बहुत दुःखी हुआ। तय किया कि इस तक़लीफ़ को दूर करूंगा। मैं सारे पंचायती विद्वानों के लिए एक नमूने का भाषण लिख रहा हूँ, जिससे उनकी तक़लीफ़ दूर हो जायेगी, ग़ालिब के समारोह सफल होंगे और ग़ालिब के प्रति मेरा फ़र्ज़ भी निभ जायेगा - हक़ तो ये है कि हक़ अदा न हुआ।

जो वेद नहीं पढ़े वे भी वैदिक धर्म को मानते हैं। जो शास्त्र नहीं पढ़े, शास्त्रों में विश्वास रखते हैं। जो ग़ालिब को नहीं समझते, वही ग़ालिब को समझा सकते है। ग़ालिब ने खुद कहा है-

जो ग़ालिब को नहीं समझे
वही उसको सही समझे

अगर ग़ालिब इस उम्दा शेर को अपने गले डालने से इंकार करे तो यह मीर को दे दिया जाये। अगर मीर भी इसका जोख़िम न उठाना चाहे तो इसे मेरा ही मान लिया जाये। इस बुनियाद पर अब भाषण खड़ा होता है।

भाइयो और बहनो!

बड़ी ख़ुशी की बात है कि सौ साल पहले ग़ालिब की मृत्यु हो गयी थी। अगर वे सौ साल पहले नहीं मरते, तो आज हमें यहाँ समारोह करने का सुनहरा अवसर न मिलता। हम ग़ालिब के आभारी है कि उन्होंने हमें ये चांस दिया।

आप पूछेंगे कि ग़ालिब कौन है? यह प्रश्न ग़ालिब के समय में भी लोग पूछते थे। ग़ालिब प्रचार से दूर रहते थे। कोई नहीं जानता था कि ग़ालिब कौन है।

ग़ालिब खुद भी नहीं जानते थे कि वे ग़ालिब है। एक दिन एक आदमी ग़ालिब के घर आया था और उसने नौकर से पूछा - क्यों जी यह तो बताओ। ग़ालिब कौन है? नौकर पड़ोसियों के पास जाकर बोला -

पूछते हैं वे कि ग़ालिब कौन है
कोई बतलाओ कि हम बतलाएँ क्या?

पड़ोसियों को भी नहीं मालूम था। नौकर ने उस आदमी से कहा- यहाँ कोई ग़ालिब-फालिब नहीं रहता। उधर लकड़ी के ताल पर

पूछो। ऐसे थे ग़ालिब। और आज के इन कवियों को देखो जो खुद अपना ढोल पीटते फिरते हैं।

मैं आज आपको एक रहस्य की बात बताता हूँ। ग़ालिब शायर थे। शायर ही नहीं, कवि भी थे। मुसलमान जिसे शायर कहते हैं, हिन्दू उसे कवि कहते हैं। बात एक ही है - राम कहो, चाहे रहीम। मैं तो हिन्दू-मुस्लिम भाई-भाई का सिद्धांत मानता हूँ। हमारे महात्मा गांधी कहा करते थे-

एक साथ मिलकर गाओ, प्यारा भारत देश हमारा
झंडा ऊँचा रहे हमारा

भाइयो, ग़ालिब विश्व के महान कवि थे। वे विश्व के ही नहीं, भारत के भी महान कवि थे। सिर्फ़ भारत के ही क्यों उर्दू के भी महान कवि थे। मैं तो उन्हें हिंदी का कवि भी मानता हूं। हिंदी-उर्दू में कोई भेद नहीं है। हिन्दू लोग जिसे हिंदी कहते हैं, मुसलमान उसे उर्दू कहते हैं। सच पूछा जाये तो ग़ालिब महान भारतीय परम्परा के कवि थे, क्यूँकि वे जुआ खेलते थे। हमारे यहाँ जुआ खेलनेवाले को धर्मराज कहते हैं। ग़ालिब कलयुग के धर्मराज थे।

अब मैं गालिब की शायरी पर प्रकाश डालूंगा। गालिब ग़ज़ल लिखते थे। वे ग़ज़ल ही नहीं, शेर भी लिखते थे। शेर लिखना बड़ा ख़तरनाक काम है। ग़ालिब खानदानी सिपाही थे, इसलिए शेर से डरते नहीं थे और उसे लिख देते थे। दुनिया में सिकन्दर सरीखे बहादुर हो गये पर शेर एक भी न लिख सके। यह तो ग़ालिब का ही दम था। और आज के ये कवि कुत्ते से डर जाते हैं। ये कायर क्या शेर लिखेंगे।

भाइयो, ग़ालिब ने बहुत दुःख भोगे। एक कोई गुण्डा तो खंजर लेकर उनके पीछे ही पड़ा रहता था। उसका नाम 'सितमगर' था। सितमगर नाम का यह गुंडा ग़ालिब को ज़िन्दगी-भर तंग करता रहा। दिल्ली की पुलिस उनसे मिली हुई थी, और उस पर कोई कार्यवाही नहीं करती थी। धिक्कार है चौहान साहब की पुलिस को।

ग़ालिब को पुलिस तंग करती थी। एक दिन वे थककर सड़क पर बैठ गये। पुलिसवाला आया और उन्हें उठाने लगा। ग़ालिब ने बडी लाचारी से कहा -

बैठे हैं रहगुज़र पे हम कोई हमें उठाये क्यों?

पुलिसवाले ने उन्हें घसीटकर किनारे कर दिया। ग़ालिब रोने लगे। किसी राहगीर ने पूछा - "अरे भाई, रो क्यों रहे हो?" ग़ालिब ने जवाब दिया -

रोयेंगे हम हज़ार बार कोई हमें सताये क्यों?

यानी अगर पुलिसवाला हमें सतायेगा, तो हम क्यों नही रोयेंगे!

दिल्ली में दूसरे शायर ग़ालिब को द्वेष कारण तंग करते थे। वे ग़ालिब की बदनामी के लिए कविताएँ लिखते थे और उन्हें फैलाते थे। एक शायर कहता था कि दिल्ली में ग़ालिब की आबरू ही नहीं है। वह लिखता है-

बना है शह का मुसाहिब फिरे है इतराया
वगरना शहर में ग़ालिब की आबरू क्या है

जरा सुनिए, ये बदमाश कैसी-कैसी बातें उस महान कवि के बारे में करते थे-

काबा किस मुँह से जाओगे ग़ालिब
शर्म तुमको मगर नहीं आती

ये दिलजले कवि-सम्मेलनों में ग़ालिब को अपने लोगों से हूट करवाते थे। परेशान होकर ग़ालिब कलकत्ता के कवि सम्मेलन में चले गये। वहाँ भी स्थानीय प्रतिभाओं ने उन्हें हूट किया। कलकत्ता में भी वे उखड़ गये।

ये ऐसे नीच लोग थे कि जब ग़ालिब मर गये और प्रशंसक रोने लगे, तो इन्हें बुरा लगा। ग़ालिब के लिए इतने लोग रोये! कलेजे पर साँप लोट गया। कहने लगे-

ग़ालिबे-ख़स्ता के बग़ैर कौन से काम बन्द हैं
रोइए ज़ार-ज़ार क्या, कीजिए हाय-हाय क्यों

आख़िर गालिब ने भी इन दुष्टों से निपटने का निश्चय कर लिया। उन्होंने कहा-

कोई दिन गर ज़िन्दगानी और है
हमने जी में अपने ठानी और है

यानी हमने ठान ली है कि जितनी ज़िन्दगी बची है, उसमें इन दुष्टों से

गिन-गिनकर बदला लेना है।

भाइयो, ग़ालिब के कष्टों का अन्त नहीं था। उन्हें दिल की बीमारी भी थी। उनके हार्ट में हमेशा दर्द होता रहता था और वे इतने परेशान थे कि जो मिलता उसी से पूछते- **आख़िर इस दर्द की दवा क्या है?** दिल्ली में उन दिनों कोई अच्छा हार्ट-स्पेशलिस्ट नहीं था। उन्होंने कलकत्ता में जाँच करायी, दवा भी ली, पर कोई फ़ायदा नहीं हुआ। आख़िर निराश होकर उन्होंने कह दिया- **मौत से पहले आदमी ग़म से निजात पाये क्यों?**

धिक्कार है हेल्थ मिनिस्टर को! इतने बड़े कवि के इलाज का इंतज़ाम नहीं कर सके। संसद में इस बात पर किसी को प्रश्न उठाना चाहिए। दिल की ही नहीं, ग़ालिब को पेट की बीमारी भी थी। उनके पेट में दर्द होता रहता था। दिल्ली के एक हक़ीम से उन्होंने दवा ली थी। एक दिन हक़ीम पांणी चौक में मिल गये। पूछा -"ग़ालिब साहिब, पेट का दर्द कैसा है?" ग़ालिब ने जवाब दिया-

दर्द मिन्नतकशे-दवा न हुआ
मैं न अच्छा हुआ, बुरा न हुआ

यानी तबीयत में कोई फ़र्क़ नहीं है। दर्द जैसा-का-तैसा है। उर्दू साहित्य के एक विद्वान ने खोज की है कि गालिब के पेट के दर्द का कारण शराब थी। हाय डॉक्टर बनर्जी साहब उस वक़्त दिल्ली में होते, तो ग़ालिब को अच्छा कर देते। कवि का दुर्भाग्य देखिए कि डॉक्टर बनर्जी उनके मरने के बाद पैदा हुए। इसी को विधि की विडम्बना कहते हैं।

अब मैं आपको बताता हूँ कि मैं ग़ालिब को बड़ा कवि क्यों मानता हूँ। दुनिया के किसी कवि ने मरने के बाद कविता नहीं लिखी। ग़ालिब एकमात्र कवि है जिन्होंने मरने के बाद भी कविता लिखी। गेटे, शेक्सपियर, कालिदास, रवीन्द्रनाथ किसी ने भी मरने के बाद एक लाइन नहीं लिखी। पर ग़ालिब मरने के बाद भी लिखते रहे। उन्होंने मरने के बाद अपनी लाश के बारे में यह लिखा-

यह लाश बेक़फ़न असद-ख़स्ता जां की है
हक़ मगफ़रत करे अजब आज़ाद मर्द था

इतना ही नहीं, उन्होंने यह भी बता दिया कि वे परदेश में मरे थे, बल्कि मारे गये थे। इस शेर को देखिये-

मुझको दयार ऐ-ग़ैर में मारा वतन से दूर
रख ली मेरे ख़ुदा ने मेरी बेक़सी की शर्म

शासन क्या सो रहा है। वह पता क्यों नहीं लगाता कि परदेश में ले जाकर किसने ग़ालिब को मारा।

भाइयो, अब मैं अत्यन्त भरे हृदय से ग़ालिब का एक संस्मरण सुनाता हूँ। शाम उतर रही थी। दिल्ली में हलकी सर्दी पड़ने लगी थी। मैं चौक में घूम रहा था। मैंने देखा, फर्गुशन साहब की दुकान से ग़ालिब शराब ख़रीद रहे हैं। मैं उनके पास गया। मैंने कहा- 'ग़ालिब साहब, **तुझे हम वली समझते जो न बादाख़्वार होता।**' ग़ालिब थोडा झेंप गये। बोले- "इधर कैसे?" मैंने कहा- 'घंटेवाले हलवाई के बगल की दुकान पर भांग पीने जा रहा हूँ। चलिए, आपको भी पिलाऊँ।' ग़ालिब मेरे साथ हो लिये। मैंने उन्हें बढ़िया केसरिया भंग पिलवायी। बाद में उन्होंने कहा भांग तो शराब से भी ज़्यादा मज़ा देती है।' मैंने कहा- यही तो भारतीय संस्कृति का मज़ा है।'

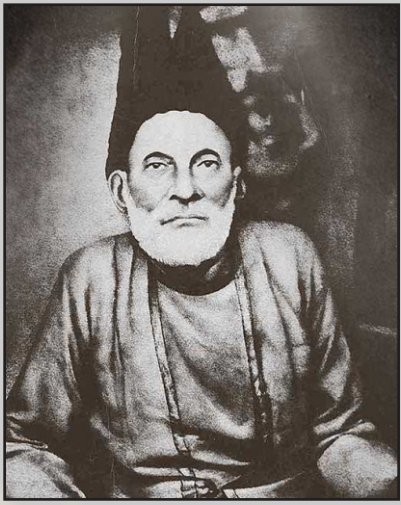

यह मेरी उनसे आख़िरी मुलाक़ात थी। इसके बाद मैं जबलपुर आकर रहने लगा। सोचता हूँ, यदि मैं दिल्ली में ही रहता तो ग़ालिब की शराब पीने की आदत छुड़ा देता। मगर होता है वही, जो मंज़ूरे-ख़ुदा होता है।

भाइयो, ऐसे थे गालिब जिनकी शताब्दी आज हम मना रहे हैं।

प्रिय पाठको!

कविग्राम पत्रिका के माध्यम से कवि-सम्मेलन संस्कृति का दस्तावेज़ीकरण करने का कार्य अनवरत चल रहा है। तकनीकी बाधाओं की वजह से कुछ पाठकों तक व्हाट्सएप ब्रॉडकास्ट लिस्ट द्वारा भेजी जा रही पत्रिका का वितरण फेल हो जाता है। इस हेतु हम पहले भी निवेदन कर चुके हैं कि यदि किसी माह आपको पत्रिका प्राप्त न हो सके तो कृपया हमारी वेबसाइट **www.kavigram.com/patrika** से पत्रिका प्राप्त कर लें। व्हाट्सएप की डिलीवरी सुनिश्चित करने के लिए कृपया हमारा फोन नम्बर ***8090904560*** अपने फोन में सेव करें। आपके इस सहयोग से हमारा श्रम वृथा होने से बच जाएगा।

एक अन्य अनुरोध यह है कि कुछ लोग हमारे फोन नम्बर पर अनावश्यक फॉरवर्डेड संदेश तथा फूल-पत्तियाँ भेजते रहते हैं। इस प्रकार के अनर्गल संचार से हम आवश्यक संदेश पढ़ने से भी चूक जाते हैं इसलिए आपसे अनुरोध है कि यदि आपने हमारा आधिकारिक नम्बर अपनी व्हाट्सएप ब्रॉडकास्ट लिस्ट में जोड़ रखा है तो उसे वहाँ से हटा दें। हमसे इस नम्बर पर केवल आवश्यक संवाद ही करें।

आप हमारी पीड़ा का अनुमान इससे लगा सकते हैं कि यदि पन्द्रह हज़ार लोगों की सम्पर्क सूची में दस प्रतिशत लोग भी रोज़ाना हमें गुड मॉर्निंग भेजेंगे तो हमारी क्या स्थिति होगी। आशा है कि आप सम्पादक मण्डल तथा वितरण दल पर दया करने का विचार करेंगे।

हमने पत्रिका के आकार वृद्धि को नियंत्रित करने के लिए अलग से कवि-सम्मेलन समाचार प्रकाशित करने की बजाय अपनी वेबसाइट पर अधिक से अधिक कवि-सम्मेलनों की रपट प्रकाशित करना शुरू कर दिया है। यदि आप गत माह में या पूर्व में हुए किसी भी कवि-सम्मेलन की रपट पढ़ना चाहते हैं तो आप हमारी वेबसाइट के **समाचार-लोक** टैब पर क्लिक करके पढ़ सकते हैं।

हमारा उद्देश्य आपको कवि-सम्मेलन से संबंधित अधिक से अधिक तथा सटीक जानकारी देना है इसलिए ऑनलाइन माध्यमों का प्रयोग करना आवश्यक हो जाता है।

-संपादक

पुष्पांजलि के
नवीनतम अंक के
अवलोकनार्थ
क्लिक करें

देश की पहली साहित्यिक ई-पत्रिका जो पढ़ी और सुनी भी जा सकती है तथा जिसमें संगीत के लिंक्स भी है जिनसे निर्मल आनंद उठाया जा सकता है।

मूल्य : मात्र आपकी मुस्कान

सामने दिए गए चिह्न को दबाने से आपका सन्देश स्वचलित रूप से हमें पहुँच जाएगा और नियमित पत्रिकाएँ भेजने के लिए आपका मोबाइल नं. पंजीकृत हो जाएगा।

8610502230 (केवल संदेश हेतु)
(कृपया अपना नाम व शहर का नाम भी लिखें)

KAVIGRAM.COM

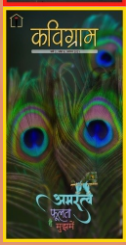

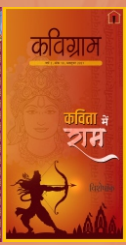

- मुखपृष्ठ
- प्रकाशन
- काव्यलोक
- समाचार लोक
- पुराने चावल
- फिल्म निर्माण
- कविग्राम पत्रिका
- कवि-सम्मेलन बुकिंग
- कवि-सम्मेलन संग्रहालय
- सम्पर्क

- कविग्राम फेसबुक समूह
- कविग्राम फेसबुक पेज
- कविग्राम ट्विटर
- कविग्राम इंस्टाग्राम
- कविग्राम टेलीग्राम